**ओ३म्**

**“ईश्वर, वेद, धर्म, जीवात्मा, सृष्टि आदि विषयक ऋषि के सारगर्भित विचार”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

ऋषि दयानन्द ने स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में 51 विषय को परिभाषित किया है। इन्हें वह स्वयं भी मानते थे। ऋषि के मन्तव्यों में सु कुछ विषयों पर हम ऋषि के शब्दों को ही प्रस्तुत कर रहे हैं।

ईश्वर-- जिस के ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिस के गुण, कर्म, स्वाभाव पवित्र हैं। जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है। उसी को परमेश्वर मानता हूं।

वेद-- चारों ‘वेदों’ (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण मानता हूं। वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिन के प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतःप्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं। और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अंग, छः उपांग, चार उपवेद और 1127 (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूं।

धर्म-- जो पक्षपातरहित न्यायाचरण सत्यभाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उस को ‘धर्म’ और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है, उस को ‘अधर्म’ मानता हूं।

जीव व जीवात्मा-- जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य (चेतन पदार्थ) है उसी को ‘जीव’ मानता हूं।

सृष्टि-- उस को कहते हैं कि जो पृथक द्रव्यों का ज्ञान व युक्ति पूर्वक मेल होकर नाना रूप होकर (नये नये पदार्थो का) बनना।

तीर्थ-- जिस से दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं उसी को तीर्थ समझता हूं, इतर जल (गंगा नदी) स्थल (हरिद्वार, बदरीनाथ, केदाननाथ, सोमनाथ) आदि को नहीं।

मनुष्य-- मनुष्य को सब से यथायोग्य स्वात्मवत् (अपनी आत्मा के समान) सुख, दुःख, हानि व लाभ में वर्तना श्रेष्ठ अन्यथा बुरा समझता हूं।

संस्कार-- ‘संस्कार’ उनको कहते हैं कि जिस से शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवें। वह गर्भाधान से श्मशानान्त सोलह प्रकार का है। इस को कर्तव्य समझता हूं और दाह (अन्त्येष्टि संस्कार) के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये।

यज्ञ-- ‘यज्ञ’ उस को कहते हैं कि जिस में विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उस से उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिन से वायु, वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उस को उत्तम समझता हूं।

आर्य-- आर्य श्रेष्ठ मनुष्यों को कहते हैं। वैसे मैं भी मानता हूं।

आचार्य-- जो सांगोपांग वेद-विद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह ‘आचार्य’ कहाता है। (नोट- आजकल हम इस शब्द का सबसे अधिक दुरूपयोग देख रहे हैं। आचार्य उसी मनुष्य के लिए प्रयोग किया जा सकता है जो सांगोपांग वेद विद्याओं का विद्वान व अध्यापक है। अपने शिष्यों व अन्यों को सत्याचार ग्रहण कराता है व मिथ्याचार का त्याग कराता है। इसका अर्थ पेड उपदेशक नहीं है। निष्काम भाव से धर्म प्रचार न करने वाले विद्वान और वेद के पद व पदार्थ से शून्य मनुष्य जो वेदों के अध्यापक नहीं हैं, उन्हें भी आचार्य कह दिया जाता है। हमें लगता है कि यह ‘आचार्य’ शब्द का दुरुपयोग या मिथ्याचार है। जिसमें वेद को पूर्णता से जानने व समझने की योग्यता ही नहीं है, वह आचार्य अर्थात् वेदाचार्य कैसे कहा जा सकता है?)

उपासना-- जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक, अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है, इस का फल ज्ञान की उन्नति आदि है। (प्रायः ईश्वर भक्ति को ही उपासना मान लिया जाना चाहिये। सभी ईश्वर भक्तों को बार बार उपासना विषयक ऋषि के इन विचारों को दोहराते रहना चाहिये और इसकी प्रत्येक बात पर ध्यान देना चाहिये।)

ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**